The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 3 | Issue 6 | June 2025
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

संथाल विद्रोह के गुमनाम वीर शहीदों का ऐतिहासिक एवं राजनीतिक अध्ययन

डॉ0 भुवनेश्वर मांझी

पीएच0डी0, राजनीति विज्ञान, सिदो कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका, झारखण्ड, Email: krbhanu72@gmail.com

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.15861619

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 24-06-2025

Published: 10-07-2025

Keywords:

संथाल विद्रोह, संथाल परगना, आदिवासी, मूलवासी, दामिन–ए–कोह, मार्शल लॉ, बाँसुरी, प्रेमगाथा

ABSTRACT

संथाल विद्रोह की भूमिका भारतीय इतिहास और स्वतंत्रता संग्राम में अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। संथाल हूल 1855 में आदिवासी समुदाय द्वारा ब्रिटिश शासन और उसके सहयोगी जमींदारों, साहूकारों के खिलाफ एक संगठित और सशस्त्र विद्रोह था। यह पहली बार था जब आदिवासी जनजातियों ने इतनी व्यापक और सुनियोजित तरीके से औपनिवेशिक सत्ता को चुनौती दी। संथाल हूल ने यह स्पष्ट किया कि आदिवासी समाज केवल शोषण सहने वाला समुदाय नहीं है, बल्कि अपनी संस्कृति, भूमि और अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाला आत्मनिर्भर समुदाय भी है। इसने आदिवासी समाज की अस्मिता को मजबूती दी। संथालों ने साहूकारों, जमींदारों और ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा किए जा रहे आर्थिक शोषण (जैसे अत्यधिक कर, कर्ज वसूली, भूमि हड़पना) के खिलाफ विद्रोह किया। यह विद्रोह सामाजिक–आर्थिक न्याय की मांग का प्रतीक बना। संथाल हूल ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ एक स्वतंत्र और जन आधारित प्रतिरोध की परंपरा की नींव रखी। यह 1857 के पहले स्वतंत्रता संग्राम से ठीक पहले हुआ, और कई इतिहासकार मानते हैं कि इसने आने वाले आंदोलनों को प्रेरणा दी। इस विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार ने आदिवासियों के लिए कुछ प्रशासनिक सुधार किए जैसे संथाल परगना का निर्माण (1855), जिससे उन्हें कुछ हद तक स्वशासन और संरक्षण मिला। जमींदारी और कर्ज के मामलों में कुछ नियंत्रण लागू किए गए। संथाल हूल केवल एक विद्रोह नहीं, बल्कि यह आदिवासी चेतना, स्वाभिमान और औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध का प्रतीक था। सिद्धू, कान्हू, चाँद और भैरव जैसे नेताओं ने इसे नेतृत्व देकर इसे ऐतिहासिक बना दिया। इसका प्रभाव भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की दिशा और

सोच दोनों पर पड़ा। भले ही संथाल विद्रोह के नेता सिदो, कान्हू, चाँद, भैरव, फूलो और झानो को माना जाता है, परंतु इस विद्रोह के कई ऐसे गुमनाम क्रांतिकारी वीर योद्धा थे, जिनका नाम इतिहास के पन्नों में दर्ज नहीं हो पाया है, जैसे वीर बैजल सोरेन, चानकू महतो, भागीरथ मांझी, राजवीर सिंह, हरदेव सिंह, चालो जोलहा, एवं बिहार प्रांत के दलित रजवार विद्रोह के वीर योद्धा जवाहिर रजवार, एतवा रजवार एवं कारू रजवार जैसे कई क्रांतिकारी योद्धाओं ने ब्रिटिश हुकूमत और महाजनी प्रथा के विरूद्ध लड़ाई लड़ते हुए अपने प्राण न्योछावर किये थे, लेकिन इन वीरों के नाम वर्तमान इतिहास के पन्नो में दर्ज नहीं है। आज उन्हें भी याद करने की आवश्यकता है।

परिचयः–

संथाल विद्रोह, कारण, घटनाएँ और महत्व

संथाल विद्रोह, जिसे संथाल हूल के नाम से भी जाना जाता ह। 1855–1856 में संथाल आदिवासी समुदाय द्वारा ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियों और जमींदारों (भूमि मालिकों) की दमनकारी प्रथाओं के खिलाफ भारत के वर्तमान झारखंड, बिहार और पश्चिम बंगाल राज्यों में किया गया एक विद्रोह था। यह विद्रोह भारत में औपनिवेशिक शासन के खिलाफ सबसे शुरुआती और सबसे महत्वपूर्ण आदिवासी विद्रोहों में से एक है।1

संथाल कौन थे ?

संथाल बिहार/झारखण्ड राज्य के राजमहल पहाड़ियों में रहने वाले कृषि प्रधान लोग थे। अंग्रेजों ने उनसे राजस्व बढ़ाने के लिए कृषि हेतु जंगलों को साफ करने को कहा। 1832 में दामिन–ए–कोह या संथाल परगना को संथालों के लिए निर्दिष्ट क्षेत्र के रूप में बनाया गया था। समय के साथ, अंग्रेजों ने संथालों का शोषण करना शुरू कर दिया, जिससे उन पर गंभीर अत्याचार और शोषण होने लगा।

संथाल विद्रोह की पृष्ठभूमि (1855–56)

संथाल विद्रोह 19वीं सदी के मध्य में भारत में एक महत्वपूर्ण विद्रोह था। वर्तमान झारखंड और पश्चिम बंगाल में रहने वाले आदिवासी समुदाय संथाल को साहूकारों, जमींदारों और ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियों द्वारा उत्पीड़न और शोषण का सामना करना पड़ा।2 विद्रोह की शुरुआत 1855 में सिद्धू और कान्हू भाइयों के नेतृत्व में हुई, जिन्होंने अन्यायपूर्ण नीतियों और अत्यधिक कराधान के खिलाफ संथाल समुदाय को एकजुट किया। संथालों का उद्देश्य अपने भूमि अधिकारों को पुनः प्राप्त करना, दमनकारी व्यवस्थाओं को समाप्त करना और एक स्वशासित समाज की स्थापना

करना था। विद्रोह तेजी से फैला, संथालों ने पुलिस स्टेशनों और ब्रिटिश स्वामित्व वाली संपत्तियों जैसे सत्ता के प्रतीकों पर हमला किया। हालाँकि, अंग्रेजों ने बलपूर्वक जवाब दिया, जिससे हिंसक संघर्ष हुआ। उनके बहादुर प्रयासों के बावजूद, 1856 में ब्रिटिश सेना द्वारा संथालों को अंततः दबा दिया गया। कई संथालों ने अपनी जान गंवाई, और विद्रोह को कुचल दिया गया। हालाँकि, विद्रोह ने स्वदेशी समुदायों की शिकायतों को उजागर किया और भूमि अधिकारों और सामाजिक न्याय की मांग करने वाले भविष्य के आंदोलनों की नींव रखी।

संथाल विद्रोह

विद्रोह का नेतृत्व चार भाइयों सिद्धू, कान्हू, चांद और भैरव मुर्मू एवं इनकी दोनों बहन फूलो और झानो ने किया था, जिन्होंने अंग्रेजों और उनके एजेंटों द्वारा लगाए गए शोषणकारी तरीकों के खिलाफ संथाल जनजातियों को संगठित किया था। संथाल, जो मुख्य रूप से कृषि करने वाले लोग थे, ब्रिटिश राजस्व नीतियों और स्थानीय जमींदारों और साहूकारों की भ्रष्ट प्रथाओं के कारण गंभीर आर्थिक शोषण और सामाजिक उत्पीड़न के शिकार थे।

संथाल विद्रोह के कारण

आर्थिक शोषण संथालों पर भारी करों का बोझ था और जमींदारों और साहूकारों द्वारा अनुचित व्यवहार किया जाता था, जिसके कारण वे गंभीर ऋणग्रस्त हो गए थे।3 सामाजिक उत्पीड़न संथालों को भेदभाव का सामना करना पड़ा और स्थानीय अधिकारियों और जमींदारों द्वारा अक्सर उनके साथ अनुचित व्यवहार किया गया। भूमि हस्तांतरण संथालों की भूमि पर जमींदारों और साहूकारों ने जबरन कब्जा कर लिया, जिससे उनकी पारंपरिक आजीविका समाप्त हो गई। ब्रिटिश राजस्व नीतियाँ अंग्रेजों द्वारा नई राजस्व प्रणालियों की शुरूआत से संथालों के सामने आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ गईं।

संथाल विद्रोह की घटनाएँ

प्रारंभिक लामबंदी 30 जून 1855 में, संथाल नेताओं सिद्धू और कान्हू ने भोगनाडीह में एक बड़ी सभा की, जहाँ उन्होंने दमनकारी प्रथाओं के खिलाफ लड़ने और अपने अधिकारों को बहाल करने की अपनी मंशा घोषित की।4 व्यापक विद्रोह तेजी से संथाल परगना क्षेत्र में फैल गया, हजारों संथाल विद्रोह में शामिल हो गए। उन्होंने पुलिस स्टेशनों, रेलवे निर्माणों और जमींदारों और साहूकारों की संपत्तियों पर हमला किया। ब्रिटिश अधिकारियों ने विद्रोह को दबाने के लिए सैन्य बल का इस्तेमाल किया। सीमित संसाधनों के बावजूद, संथालों ने अच्छी तरह से सशस्त्र ब्रिटिश सेना के खिलाफ बहादुरी से लड़ाई लड़ी। 10 नवम्बर 1855 को भागलपुर से मुर्शिदाबाद तक मार्शल लॉ लागू कर दिया गया था। दमन 1856 के अंत तक, अंग्रेजों ने क्रूर उपायों के माध्यम से विद्रोह को दबाने में कामयाबी हासिल कर ली थी, जिसमें सामूहिक हत्याएं और संथाल गांवों का विनाश भी शामिल था।

संथाल विद्रोह का महत्व

औपनिवेशिक शासन का प्रतिरोध संथाल विद्रोह भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन और शोषण के विरुद्ध जनजातीय प्रतिरोध का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। जनजातीय अधिकारों के प्रति जागरूकता विद्रोह ने जनजातीय समुदायों की दुर्दशा को उजागर किया और उनके मुद्दों को सामने लाया, जिसके परिणामस्वरूप अंततः नीतिगत परिवर्तन हुए। भावी आंदोलनों के लिए प्रेरणा संथालों के साहस और दृढ़ संकल्प ने भावी पीढ़ियों और अन्य आदिवासी समुदायों को उत्पीड़न के खिलाफ खड़े होने के लिए प्रेरित किया। संथाल परगना का निर्माण संथाल विद्रोह को मान्यता देते हुए, अंग्रेजों ने संथालों की शिकायतों को दूर करने और उन्हें कुछ हद तक स्वायत्तता प्रदान करने के लिए संथाल परगना डिवीजन की स्थापना की।

बैजल बाबा के प्रेम की दीवानी अंग्रेज अफसर की बिटिया, सुंदरपहाड़ी में आज भी जिंदा है इनकी प्रेम गाथा

कौन है वीर बैजल बाबा ६

सुन्दरपहाड़ी प्रखंड जो गोड्डा जिला का सघन वनच्छादित पर्वत से घिरा है इस इलाके का एक छोटा सा गांव कल्हाझोर है। कल्हाझोर में वीर बैजल सोरेन की एक आदमकद प्रतिमा जिसमें उन्हें बांसुरी व सारंगी लिये बनाया गया है। हर वर्ष कल्हाझोर में वीर बैजल के जयंती के अवसर पर बड़ा मेला का आयोजन किया जाता है। जिसमें मुख्य रूप से आदिवासी नृत्य व संगीत की भरमार रहती है। वीर बैजल एक ऐसे क्रांतिकारी योद्धा का नाम है जिसने भारत माता की आजादी के लिये अपनी जान न्योछावर की। बैजल सोरेन जितना क्रांतिकारी था उतना ही सौम्य सरल और प्रकृति प्रेमी के साथ संगीत के बीच रहने वाला भी था। बैजल सोरेन के बांसुरी की धुन इतनी समोहन करने वाली थी कि इसकी दिवानी अंग्रेज जेलर की बेटी हो गयी और यह धुन इतिहास बन गया। फांसी के दौरान बांसुरी की धुन सुन कर जेलर के साथ–साथ फांसी देने वाला जल्लाद भी अपनी सुझ–बूझ खो बैठा। इस बीच समय सीमा बीत जाने के बाद उनकी फांसी टल गयी।

बैजल बाबा एक रियल हीरोः– बैजल बाबा की प्रेम कथा 1856–57 की है जब सुंदरपहाडी के घनी वादियों के कल्हाझोर का बैजल सोरेन अपनी मिजाज से बांसुरी बजाता था। सांवला रंग, हट्टा कट्टा कद–काठी, लंबा चौड़ा जवान, घनी भौहें, लंबी मूंछ के साथ अपनी हाथों में बांसुरी लिये आज भी बैजल की प्रतिमा उनकी खुबसुरती को बयां करती है। उस वक्त उसकी बाँसुरी की धुन सुन कर ही सैकडों मवेशी जिसे हर दिन चराया करते थे उनके पास आ जाया करता था। हर दिन वो मवेशी को चरा कर अपनी परिवार के लोगों को दो वक्त का रोटी दे पाता था। शायद इसी समय संताल परगना में महाजनी प्रथा के साथ–साथ अंग्रेजों के दबिश के खिलाफत में आदिवासी एकत्र हो रहे थे। एक दिन महाजन साहुकार ने गांव भर के लोगो को मवेशी को आदिवासियों द्वारा सूद व लगान की राशि ना देने के आरोप में हांक कर अपने घर ले आया था, महाजन के ऐसे लगातार आतंक से जहां गरीब आदिवासी परेशान थे वहीं अंग्रेज हुकूमत का भी पूरा सपोट ऐसे महाजनों पर था। बैजल सोरेन ने जब परेशान अपने गांव वालों को देखा तो वो काफी नाराज हुए तथा बदला लेने के लिये एक योजना बना ली। योजना के तहत

साहुकार को कल्हाझोर बुलाया गया और उनके उसी कल्हाझोर पहाड़ी के पास राशि चुकता करने का प्रलोभन देकर ले गया। ऐसा बताया जाता है कि वीर बैजल बाबा ने साहुकार का सर काट कर पहाड़ की चोटी पर टांग दिया। इस घटना के बाद अंग्रेजों का दबिश बढ़ा और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। हरिपुर से मोलपहाडी वहां से शिकारीपाड़ा और शिकारीपाड़ा से सौरंधा गांव होते हुए सिउड़ी जेल में ले जाकर सात दिनों तक बंद रखा। इस बीच वैजल को फांसी की सजा मुकर्रर कर दी गयी। बताया जाता है कि फांसी से एक दिन पहले नियमतः उनके खाने और अन्य अंतिम इच्छाओं को पूछे जाने के बाद खाना के रूप में बेल का फल तथा बांसुरी बजाने के लिये समय मांगा गया। फांसी के दिन बैजल सोरेन ने बेल खा कर बांसुरी की सूर–तान छेड़ दी। इस दौरान उनकी बांसुरी की धुन पर अंग्रेज अफसर के साथ–साथ फांसी देने वाला जल्लाद के साथ अंग्रेज जेलर की बेटी मंत्रमुग्ध हो गयी और इस बीच फांसी का समय टल गया। फांसी की सजा भी उनकी बांसुरी की वजह से टल गयी और फिर नया जीवन मिल गया।

कौन है चानकू महतो ?

चानकू महतो झारखंड का एक ऐसा नायक जिसे इतिहासकारों ने भूला दिया। लेकिन आज भी प्राचीन राड़ सभ्यता के वंशज अपने इस नायक को याद करना नहीं भूलते। बात बहुत साल पहले की है तब आजादी की पहली लड़ाई 1857 की क्रांति भी नहीं हुई थी उससे पहले झारखंड में हूल विद्रोह हो चुका था । इसी हूल विद्रोह के नायक थे चानकू महतो जिन्होंने अंग्रेजी सेना के छक्के छुड़ा दिए थे। गोड्डा के रंगमटिया गांव में 9 फरवरी, 1816 को जन्मे चानकू महतो बचपन से ही साहसी और नेतृत्व करने की क्षमता विकसित कर चुके थे। पिता का नाम–कारू महतो एवं माता का नाम–बड़की महतवाइन था। अपनी इन्हीं खूबियों की वजह से गांव का प्रधान बने और फिर कुड़मि स्वशासन व्यवस्था के परगना के परगनैत भी बने। इसी दौरान ईस्ट् इंडिया कंपनी गोड्डा इलाके में भी दाखिल हो चुकी थी। अंग्रेजों ने उस भूमि पर कर लगा दिया था जिसे आज तक राड़ या कुड़मी समाज सार्वजनिक मानते रहे थे, जल–जंगल और जमीन पर जिनका हक था उन्हें टैक्स देना नागवार गुजरा। चानकू महतो यह सब देख रहे थे।

अंग्रेजों ने चानकू महतो के समाज को किया तबाह

इतना ही नहीं अंग्रेजों ने इनके पारंपरिक स्वशासन पर भी हमला बोल दिया था। गांव की एक अलग वैकल्पिक सरकार खड़ी कर दी। मनमानी बढ़ने लगी तब आदिवासियों–मूलवासियों ने जवाब देने की ठानी। विद्रोह ही एकमात्र रास्ता था और इसके लिए गांव–गांव बैठकें होने लगीं और लोग एकजुट होने लगे। चानकू महतो ने नेतृत्व संभाला। चानकू ने नारा दिया 'आपोन माटी, आपोन दाना, पेट काटी निही देबञ खजाना।' हूल क्रांति से पहले 1853–54 में अपने प्रमुख सहयोगियों **राजवीर सिंह, बेजल सोरेन, भागीरथ मांझी, हुघली महतो, बुधु राय, बलुआ महतो, रामा गोप, चालो जोलहा, हरदेव सिंह** के साथ जमींदारों और कंपनी सरकार के खिलाफ आंदोलन छेड़ दिया। संथाल हूल के वीर योद्धा राजवीर सिंह एवं हरदेव सिंह दोनों गोड्डा जिले के सोनारचक गाँव के रहने वाले थे। हूल

क्रांति की तैयारी चल रही थी और चानकू महतो इस आंदोलन में अपने पूरे साथियों के साथ शामिल हो गए। सिदो–कान्हू ने 30 जून, 1855 को विशाल सभा या कहिए विद्रोह की तिथि निर्धारित की। सभा में पूरे संताल परगना से लोग एकत्रित हुए और विद्रोह कर दिया। इस आंदोलन की बौद्धिक अगुवाई शाम परगना कर रहे थे। इस विद्रोह में हजारों आदिवासी मारे गए। आंदोलन के कई अगुवा बच गए। चानकू महतो भी पुलिस की पकड़ में न आ सके। हूल क्रांति में संताली, महतो व तमाम स्थानीय जातियों ने योगदान दिया था और हजारों आदिवासी बलिदान हो गए थे। चानकू महतो का नाम संताल विद्रोह के गीतों में इस तरह याद किया जाता है। ''सिद्धू कनु खुरखुरीर ऊपरे, चांद–वैरब लहरे लहरेय चंकू महतो, रामा गोप लहरे लहरे, चल्लू जोलहा लहरे''। उनका नारा था। –

'आपोन माटी, आपोन दाना, पेट काटी निही देबञ खजाना।'6

चानकू महतो को पुलिस खोज रही थी। विद्रोही नायक बन गए चानकू महतो। महीनों तक पुलिस और चानकू के बीच लुकाछिपी का खेल चलता रहा। सन् 1855 के अक्टूबर महीने में सोनारचक में जनसभा थी। उसमें चानकू शामिल हुए और लोगों को संबोधित कर रहे थे कि एक गद्दार नायब प्रताप नारायण ने अंग्रेजी सरकार को उनकी उपस्थिति की सूचना दे दी। अंग्रेजी सेना ने तेजी से कार्रवाई करते हुए चानकू महतो को चारों तरफ से घेर लिया और युद्ध शुरू हो गया। इस हमले में चानकू घायल हो गए, लेकिन उनके साथी उन्हें सुरक्षित स्थान पर लेकर चले गए। चानकू महतो एक बार फिर पुलिस की पकड़ में नहीं आ सके। अब पुलिस का गुस्सा सातवें आसमान पर था। पुलिस को किसी ने सूचित कर दिया कि चानकू महतो अपने ननिहाल बाड़ेडीह गांव में हैं। पुलिस यहां चुपके से पहुंची और उन्हें गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद 15 मई, 1856 को गोड्डा के राजकचहरी स्थित कझिया नदी के किनारे उन्हें फांसी दे दी गई। अंग्रेजी सेना इतने गुस्से में थी कि 1856 में बाड़ेडीह महतो टोले को पूरी तरह से उजाड़ दिया।

बिहार का पहला दलित (रजवार) विद्रोहः– जुल्म, लूट और गुलामी के खिलाफ 1857 की क्रांति में आम लोगों, खासकर निचले तबके की भागीदारी धीरे–धीरे सामने आने लगी है, लेकिन कुछ पन्ने अब भी अनपढ़े हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण बिहार का रजवार विद्रोह है, जो अब तक इतिहास की किताबों में फुटनोट के तौर पर ही दिखता है। यह बिहार का पहला दलित विद्रोह था और संभवतः अब तक का सबसे बड़ा विद्रोह। 1857 में शुरू हुआ और विद्रोह अगले दस सालों तक जारी रहा।7 1859 तक देश के अन्य हिस्सों में 1857 का संघर्ष या तो थम गया या हार गया, लेकिन रजवार विद्रोह अनवरत जारी रहा। यह संघर्ष पूर्व गया जिले के नवादा और नालंदा की पहाड़ियों में लड़ा गया था। एक समय तो रजवारों ने इस इलाके से अंग्रेजों का सफाया करने में भी कामयाबी हासिल की थी। मूलतः यह ''कामिया'' प्रथा (एक प्रकार की ऋण व्यवस्था जिसके तहत खेतिहर मजदूरों को बंधुआ मजदूर बना दिया जाता था) के खिलाफ शुरू किया गया विद्रोह था, बिहार में रजवार विद्रोह के नायक जवाहिर रजवार, एतवा रजवार, एवं कारू रजवार थे, जो बिहार राज्य के गया एवं नवादा जिले के रहने वाले थे।

खरवारध्खेरवाड़ आंदोलन (1874 ई.)

झारखण्ड में हुए जनजातीय सुधारवादी आंदोलनों में खरवारध्खेरवाड़ आंदोलन का उल्लेखनीय स्थान है। यह आंदोलन आरंभ में तो एकेश्वरवाद एवं सामाजिक सुधार की शिक्षा देता था, लेकिन अपने दमन के ठीक पूर्व इसने राजस्व बंदोबस्ती की गतिविधियों के विरुद्ध एक अभियान का रूप धारण किया। इस आंदोलन का नेतृत्व खरवार जनजाति के भागीरथ मांझी ने किया। इसी कारण इसे 'भागीरथ मांझी का आंदोलन' भी कहा जाता है।

खरवार आंदोलन के प्रमुख तथ्य

अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ हुए अहिंसात्मक संघर्ष में से एक खरवार आंदोलन था। यह आन्दोलन 1874 ई. में प्रारंभ हुआ। इसका नायक भागीरथ मांझी था। इसका स्वरूप सफाहोड़ आंदोलन से किसी रूप में अलग नहीं था जो बाद के दिनों में अपने असली रूप में प्रकट हुआ। इसे मुखर करने का श्रेय राजमहल के भगवान दास एवं दुमका के लंबोदर मुखर्जी को जाता है। भागीरथ मांझी ने अंग्रेजी शासन के प्रति असहयोगात्मक नीति अपनाई थी एवं खुद को बौंसी गांव का राजा घोषित कर जमींदारों एवं सरकार को लगान नहीं देकर खुद लगान प्राप्त करने की पद्धति चलाई। इनके असहयोग से जुड़े पहलुओं को ही बाद में गांधी जी ने प्रयोग में लाया। भागीरथ मांझी का जन्म गोड्डा जिले के तेलडीहा गांव में हुआ था, जहां इन्होंने एक पीठ की स्थापना की थी। यह खरवार आंदोलन का दूसरा चरण 1881 की जनगणना के खिलाफ दुविधा गोसांई के नेतृत्व में हुए आंदोलन को माना जाता है। भागीरथ मांझी आदिवासियों में 'बाबा' के नाम से प्रसिद्ध था।

निष्कर्षः– संथाल विद्रोह ने यह स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश शासन आदिवासियों के अधिकारों और जीवनशैली को पूरी तरह नजरअंदाज कर रहा था। विद्रोह को बलपूर्वक कुचला गया, जिससे उनकी क्रूर नीतियाँ सामने आईं। यह विद्रोह आदिवासियों में अपने अधिकारों और स्वाभिमान के प्रति एक नई चेतना लाया। उन्होंने महसूस किया कि उन्हें अपने अस्तित्व और संस्कृति के लिए लड़ना होगा। संथाल विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार को मजबूरन कुछ प्रशासनिक बदलाव करने पड़े। उदाहरण के लिए, 1855 में ''संथाल परगना'' के गठन से यह क्षेत्र एक विशेष प्रशासनिक इकाई बन गया, जिससे आदिवासियों को कुछ हद तक संरक्षण मिला। यह विद्रोह भारत में उपनिवेशवाद के विरुद्ध होने वाले कई बड़े आंदोलनों के लिए प्रेरणा स्रोत बना। इससे यह सिद्ध हो गया कि आदिवासी समुदाय भी संगठित होकर प्रभावशाली प्रतिरोध कर सकते हैं। सिद्धू और कान्हू जैसे संथाल नेताओं ने बलिदान देकर इतिहास में अमर स्थान प्राप्त किया। वे आज भी आदिवासी गौरव और संघर्ष के प्रतीक माने जाते हैं। संथाल विद्रोह केवल एक क्षेत्रीय विद्रोह नहीं था, बल्कि यह आदिवासियों के आत्मसम्मान, अधिकार और स्वतंत्रता की लड़ाई का प्रतीक बन गया, जिसने आगे चलकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को भी प्रभावित किया। इस शोध पत्र के माध्यम से ये कहा जा सकता है कि संथाल विद्रोह भले ही संथाल क्षेत्र में हुआ था, लेकिन इसका प्रभाव काफी व्यापक क्षेत्रों में देखा जाता है। संथाल विद्रोह में आदिवासी के साथ–साथ गैर आदिवासी नेतृत्व का भी उल्लेख मिलता है। ब्रिटिश

हुकूमत के विरूद्ध में बैजल सोरेन, चानकू महतो, भागीरथ मांझी, राजवीर सिंह, हरदेव सिंह, चालो जोलहा, बुधु राय, हुघली महतो, बलुआ महतो, रामा गोप, एवं बिहार प्रांत के जवाहिर रजवार, एतवा रजवार, तथा कारू रजवार की भी अहम भूमिका रही है। इन गुमनाम क्रांतिकारी वीर शहीदों के इतिहास को जानने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूचीः–

1. चंद्रा बिपिन, भारत का स्वतंत्रता संग्राम, पृ0 41
2. सोंथल परगना अधिनियम–1855
3. संथाल परगना, द एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका–1911, पृ0 188
4. कविराज नरहरी (2001), संताल ग्राम समुदाय और 1856 का संताल विद्रोह (आलेख)
5. कमल किशोर, मैं हूँ गोड्डा, पत्रिका, प्रभात खबर, 10 वाँ संस्करण, पृ0 32
6. अग्रवाल अरूण, झारखण्ड सार संग्रह, उड़ान पब्लिकेशन, रांची, पृ0 33
7. सिंह कुमार सुरेश (2008) भारत के लोग बिहार, झारखण्ड सहित (आलेख)